IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 5, Ser. 1 (May. 2019) 80-83
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

वैदिक चिंतन में वन संरक्षण एवं संवर्धन

अमित कुमार[1]। दुर्गा दत्त शर्मा [2]
[1]*सहायक आचार्य (भूगोल), राजकीय महाविद्यालय, भादरा, जिला हनुमानगढ़, राजस्थान, भारत*
[2]*सह–आचार्य (भूगोल), डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत*

सारांश

यह मनुष्य की अदूरदर्शिता का ही परिणाम है कि वर्तमान समय में वनोन्मूलन जैसे कृत्यों से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है तथा अनेक पर्यावरणीय समस्याएं हमारे सम्मुख खड़ी हैं। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, खनन, विकास परियोजनाओं, कृषि एवं बसावटों के दबाव में 'पृथ्वी के फेफड़ों' अर्थात् वनों का कटना जैव विविधता पर भयंकर संकट बना हुआ है। वन विनाश के कारण उन पर आश्रित जीव–जंतु संकटग्रस्त हो रहे हैं। ऐसे में भावी पीढ़ियों और जीव–जगत् के हितार्थ प्राकृतिक वनस्पति का संरक्षण एवं वनों का पुनर्स्थापन नितांत आवश्यक हो गया है। परंतु यदि हम भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ वन संरक्षण एवं संवर्धन की सुदीर्घ परंपरा मिलती है। यहाँ अति प्राचीन काल से ही वृक्षोपासना का व्यापक प्रचलन रहा है। वैदिक साहित्य में यत्र–तत्र वनस्पतिजात के लिये कल्याणकारी भाव परिलक्षित होते हैं तथा वन संरक्षण एवं संवर्धन को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। आज जब मानव द्वारा निरंतर प्राकृतिक जंगलों को उजाड़ कर 'कंकरीट के जंगल' स्थापित किये जा रहे हैं तो ऐसे में वैदिक चिंतन में प्राकृतिक वनस्पति हेतु अभिव्यक्त संरक्षणकारी एवं कल्याणकारी दृष्टिकोण को व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से वन संरक्षण की दिशा में सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा मानव जाति अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेगी।

बीज शब्द : *वैदिक चिंतन, वन संरक्षण, वनोन्मूलन, पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन, पर्यावरणीय समस्याएं, औद्योगीकरण, खनन, जैव विविधता, प्राकृतिक वनस्पति, वैदिक साहित्य, वनस्पतिजात, प्रथम औद्योगिक क्रांति, प्राकृतिक संसाधन, आधुनिक मानव, भोगवादी जीवनशैली, 'तथाकथित' विकास, प्रकृति, पर्यावरण की अवशोषी क्षमता, खाद्य श्रृंखला, प्राकृतिक आवास, प्रजाति, जलवायु परिवर्तन, वनाग्नि, सभ्यता, प्राकृतिक तत्त्व, भारतीय पर्यावरण दर्शन, सहजीविता का सिद्धांत, भारतीय संस्कृति, आरण्यक परंपरा, द्वीप, वैदिक काल, यज्ञ, प्राकृतिक पर्यावरण, अरण्यानी, पारिस्थितिक तंत्र।*

परिचय

विश्व में प्रथम औद्योगिक क्रांति के आगमन के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन का अनवरत क्रम प्रारंभ हो गया। आधुनिक मानव की भोगवादी जीवनशैली और 'तथाकथित' विकास की लालसा ने प्रकृति का निरंतर शोषण किया है, जिससे सृजित अवशेष पर्यावरण की अवशोषी क्षमता से बाहर हो गये हैं। मनुष्य की अदूरदर्शिता का ही परिणाम है कि वनोन्मूलन जैसे कृत्यों से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है तथा अनेक पर्यावरणीय समस्याएं हमारे सम्मुख खड़ी हैं। वस्तुतः स्वयं जीवनदायिनी पृथ्वी का अस्तित्व ही एक चुनौती बन गया है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, खनन, विकास परियोजनाओं, कृषि एवं बसावटों के दबाव में 'पृथ्वी के फेफड़ों' अर्थात् वनों का कटना जैव विविधता पर भयंकर संकट बना हुआ है तथा खाद्य श्रृंखला में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है। वन विनाश के कारण उन पर आश्रित जीव–जंतु संकटग्रस्त हो रहे हैं। वन्य जीवों के प्राकृतिक आवासों के विखंडन एवं विनाश से जीवों की कई प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं। दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन के कारण वनाग्नि की घटनाएं बढ़ रही हैं। ऐसे में भावी पीढ़ियों और जीव–जगत् के हितार्थ आज प्राकृतिक वनस्पति का संरक्षण एवं वनों का पुनर्स्थापन नितांत आवश्यक हो गया है।

विवेचन

यदि हम भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ सभ्यता के उदयकाल से ही प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति संरक्षणकारी एवं कल्याणकारी भावना मुखरित हुई है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[1] के व्यापक दृष्टिकोण से अनुप्राणित भारतीय पर्यावरण दर्शन प्रकृति और मानव के अन्योन्याश्रित संबंधों तथा सह–अस्तित्व पर बल देता है। जगत् का अस्तित्व प्राकृतिक शक्तियों और प्राणियों की सहजीविता के सिद्धांत पर ही टिका हुआ है। इसी के अनरूप यहाँ मनुष्य ने प्रारंभ से ही पर्यावरण एवं इसके तत्त्वों की महत्ता को जानकर प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखा। उक्त आलोक में यहाँ वन संरक्षण एवं संवर्धन की भी सुदीर्घ परंपरा मिलती है।

वृक्ष भारतीय संस्कृति के पोषक माने गये हैं। इनके इर्द–गिर्द ऋषि–मुनियों ने अपने आश्रमों व गुरुकुलों को स्थापित कर प्रकृति को पल्लवित–पुष्पित किया। आरण्यक परंपरा में अनेक गौरव ग्रंथ रचे गये। पुराणों में वर्णित भूखंडों अर्थात् द्वीपों (महाद्वीपों) में से जम्बू, प्लक्ष एवं शाल्मल द्वीपों का नामकरण क्रमशः जम्बू (जामुन), प्लक्ष (पाकड़) एवं शाल्मली (रेशम कपास) वृक्ष के नाम पर तथा कुश द्वीप का नामकरण कुश (पोआ) घास के नाम पर[2] किया जाना वनस्पति की महत्ता को दर्शाता है।

भारत में अनेक परंपराएं एवं संस्कार वन संरक्षण पर आधारित थे। यहाँ अति प्राचीन काल से ही वृक्षोपासना का व्यापक प्रचलन मिलता है तथा प्रत्येक ग्राम में एक पवित्र वृक्ष अथवा वृक्ष समूह होता था[3]। अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (वट), तुलसी, अशोक, शमी (खेजड़ी), अर्जुन, खदिर (खैर), नीम, आँवला आदि वृक्ष पवित्र माने गये हैं, अतएव इनकी सुरक्षा एवं पूजा की जाती है; हालांकि इनमें से अधिकतर का औषधीय महत्त्व रहा है। कुश या दर्भ घास वैदिक काल से पवित्र मानी जाती है। उत्सवधर्मी संस्कृति में पर्व विशेष पर वृक्ष विशेष के पूजन की परंपरा विद्यमान है। बड़े और छोटे वृक्षों के संरक्षण की कामना अनेक प्राचीन ग्रंथों में की गयी है। वृक्ष संरक्षण की अभिलाषा आज तक बरकरार है। आज भी बड़े–बड़े यज्ञों और छोटे–छोटे धार्मिक अनुष्ठानों के अंत में पुरोहित एवं उपासक जंगली वृक्षों और सामान्य वनस्पतियों की उन्नति व शांति की कामना करते हैं।[4]

यदि हम वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करें तो इसमें यत्र–तत्र वनस्पतिजात के लिये कल्याणकारी भाव परिलक्षित होते हैं। *ऋग्वेद* से प्रारंभ करके पश्चात्वर्ती वेद संहिताओं, यथा यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद और इनसे संबंधित ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रंथों में वन संरक्षण एवं संवर्धन के अनेक उद्धरण मिलते हैं। वैदिक चिंतन में 'सुप्पिपला ओषधयो भवन्तु' अर्थात् पृथ्वी औषधीय पौधों से समृद्ध हो तथा वृक्ष फलों से लदे हो जैसे कई आह्वान दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक साहित्य में चित्रित मानव समाज वन संरक्षण के प्रति सजग है।

ऋग्वेद में वनों की रक्षा करने का आह्वान किया गया है। वनदेवी अरण्यानी को संदर्भित कर कहा गया है कि वन और इसमें रहने वाले जंगली जीव किसी को आघात नहीं पहुँचाते हैं, यदि कोई उन्हें आहत न करे। वनों से स्वादिष्ट फलादि खाने को भी मिलते हैं –

''न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते।।''[5]

वन में वनस्पति को स्थापित करो कहकर पारिस्थितिक तंत्र में इनकी अनिवार्यता को दर्शाया गया है –
'वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्'[6]।

विश्वमंगलकामना के निमित्त औषधियों और वनों में विद्यमान वृक्षों के सुखकर होने की प्रार्थना की गयी है –
'शं न ओषधीर्वविनो भवन्तु'[7]।

इसी प्रकार पृथिवी से यह कामना की गयी है कि उसके वन मनुष्य के लिये कल्याणकारी होवें –
'अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु'[8]।

यजुर्वेद के विभिन्न मंत्रों में वृक्षों तथा वन, वनस्पति एवं औषधीय पादपों का रक्षण करने वालों को नमस्कार करते हुए उनके प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया गया है –

'नमो वृक्षेभ्यो'[9]।

'वनानां पतये नमः'[10]।

'वृक्षाणां पतये नमो'[11]।

'ओषधीनां पतये नमो'[12]।

'अरण्यां पतये नमः'[13]।

'नमो वन्याय च'[14]।

मनुष्य को वनस्पतियों का नाश न करने के निर्देश दिये गये हैं –

'मा वनस्पतीन्'[15]।

पादपों ही नहीं अपितु औषधियुक्त पादपों के संवर्धन को भी बराबर महत्त्व मिला है। वनस्पतियों से प्राप्त होने वाली औषधियों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए इन्हें समूल न उखाड़ने की कामना कर वृक्षोन्मूलन न करने का संदेश दिया गया है–

'ओषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्'[16]।

अथर्ववेद में प्राकृतिक पर्यावरण में मुख्यतः तीन तत्त्वों, यथा जल, वायु एवं औषधि (वनस्पति) की महत्ती भूमिका को निरूपित किया गया है। ये प्रकृति और दिव्यता के तीन आनंदमयी उपहार हैं –

''त्रीणिछन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाताओषधयस्तान्येकस्मिन्भुवन आर्पितानि।।''[17]

प्राणवायु प्रदाता के नाते वृक्ष–वनस्पतियाँ सभी प्राणियों के प्राण माने गये हैं –

'प्राणो वै वनस्पतिः'[18]।

बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है कि वन का विशाल वृक्ष मनुष्य शरीर के समान है; पत्ते रोम के समान हैं; छिलका चर्म के समान है। रक्त की भाँति ही वृक्ष में उत्पट–रस विद्यमान है।[19]

निष्कर्ष

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक वाङ्मय में वन संरक्षण एवं संवर्धन को पर्याप्त महत्त्व मिला है। आज जब मानव द्वारा निरंतर प्राकृतिक जंगलों को उजाड़ कर 'कंकरीट के जंगल' स्थापित किये जा रहे हैं, जिससे पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन और जैव विविधता के लिये खतरा उत्पन्न हो रहा है, तो ऐसे में वैदिक चिंतन में प्राकृतिक वनस्पति हेतु अभिव्यक्त संरक्षणकारी एवं कल्याणकारी दृष्टिकोण को व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से वन संरक्षण की दिशा में सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा मानव जाति अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेगी।

संदर्भ

1. *महोपनिषद्* 4 / 71
2. *द जियोग्राफी ऑफ द पुराणाज* – एस. एम. अली, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1966
3. *अद्भुत भारत* – ए. एल. बाशम, हिंदी अनु., शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा
4. *प्रारंभिक भारत का परिचय* – रामशरण शर्मा, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृ. 45
5. *ऋग्वेद* 10 / 146 / 5
6. *ऋग्वेद* 10 / 101 / 11
7. *ऋग्वेद* 7 / 35 / 5
8. *अथर्ववेद* 12 / 1 / 11
9. *यजुर्वेद* 16 / 17

10. *यजुर्वेद* 16 / 18

11. *यजुर्वेद* 16 / 19

12. *यजुर्वेद* 16 / 19

13. *यजुर्वेद* 16 / 20

14. *यजुर्वेद* 16 / 34

15. *यजुर्वेद* 11 / 45

16. *यजुर्वेद* 1 / 25

17. *अथर्ववेद* 18 / 1 / 17

18. *ऐतरेय ब्राह्मण* 2 / 4

19. *बृहदारण्यकोपनिषद्* 3 / 9 / 28